हरियाणवी संस्कृति का एक नया अध्याय

लेखक – अनिल गोयल

1968 में बनी पहली फिल्म ‘धरती’ से होता हुआ हरियाणवी फिल्म उद्योग ‘चंद्रावल’ (1984) और ‘लाडो बसन्ती’ से होता हुआ आज ‘दादा लखमी चन्द’ तक आ पहुँचा है। इस बीच अश्विनी चौधरी की फिल्म ‘लाडो’ (2000) ने राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार जीता, और इसके चौदह साल बाद राजीव भाटिया की हरियाणवी फिल्म ‘पगड़ी दि आनर’ (2014) ने तो दो-दो राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार प्राप्त किये! ‘दादा लखमी’ क्षेत्रीय फिल्मों की श्रेणी में सर्वश्रेष्ठ फिल्म का राष्ट्रीय पुरस्कार जीत चुकी है। इसने साठ से भी अधिक अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार जीते हैं। फ्रांस के प्रतिष्ठित कान फिल्म समारोह के फिल्म बाजार में दिखाई जानेवाली ‘दादा लखमी’ सच्चे अर्थों में एक ऐसे सिनेमाई मुहावरे को गढ़ती है, जहाँ से हरियाणवी फिल्मों के लिये अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के द्वार खुल सकते हैं। हरियाणा की पारम्परिक लोकनाट्य विधा ‘सांग’ इसकी क्षमता रखती है। आमजनों की अपनी सहज भाषा में सहज जीवन के वात्सल्य से लेकर देशभक्ति, इतिहास, दर्शन और पौराणिकता तक का ज्ञान आमजन तक इन सांगों के

माध्यम से पहुँचता रहा है।

लोक-परम्परा की इसी कड़ी में, हरियाणा के सूर्यकवि लखमी चन्द के सांग पिछली लगभग एक शताब्दी में हरियाणा के सांस्कृतिक प्रतीक के रूप में स्थापित रहे हैं। उन्हें “हरियाणा का कालिदास” भी कहा जाता है। उनका बचपन बहुत अभावों में बीता! केवल अठारह-उन्नीस वर्ष की आयु में ही लखमी चन्द ने अपने गुरुभाई जैलाल नदीपुर माजरावाले के साथ मिलकर साँग मंचित करने के लिये अपना अलग बेड़ा बनाया। उनकी प्रतिभा ने एक वर्ष के अन्दर ही उनके बेड़े को लोगों के बीच स्थापित कर दिया था। कुल बयालीस वर्ष की आयु तक ही जीवित रहे लखमी चन्द ने लगभग दो दर्जन सांगों की रचना की। शीघ्र ही पण्डित लखमी चन्द ‘साँग-सम्राट’ के रूप में विख्यात हो गये। वे कट्टर अनुशासन-प्रिय व्यक्ति थे। उनके बेड़े में हरियाणा के उत्तम से उत्तम कलाकार भी सम्मिलित होना चाहते थे। उन्होंने साँग की कला को उन ऊँचाईयों तक पहुंचा दिया, जिसका मुकाबला आज तक भी कोई और व्यक्ति नहीं कर पाया है।

इन्हीं सूर्यकवि पण्डित लखमी चन्द पर हरियाणा के अभिनेता- निर्माता-निर्देशक यशपाल शर्मा ने ‘दादा लखमी चन्द’ फिल्म बनाई है. इसमें यशपाल शर्मा, मेघना मालिक, राजेन्द्र गुप्ता, आदि ने मुख्य भूमिकाएँ निभाई हैं। फिल्म में लखमी चन्द के बचपन की भूमिका में योगेश वत्स, और युवावस्था की भूमिका में हितेश शर्मा ने बहुत सशक्त अभिनय किया है। योगेश वत्स ने सुन्दर अभिनय करने के साथ-साथ इस फिल्म में गाने भी गाये हैं, जिसके मधुर गायन ने दर्शकों को बहुत आकर्षित किया. युवा लखमी की भूमिका निभा रहे हितेश का गायन और सांगी की भूमिका करते समय उनका नर्तन और अभिनय दर्शकों को लगातार बाँधे रखता है।

बहुत बार देखा गया है कि कोई अभिनेता-निर्देशक अपने को ही फिल्म के ऊपर हावी हो जाने देता है। लेकिन यशपाल शर्मा ने अपने को इससे बचाये रखा है। प्रारम्भ में कुछ समय को छोड़ कर बाकी की फिल्म में वे परदे से गायब हो जाते हैं।

लखमी के बाल्यकाल और किशोरावस्था की भूमिकाओं में भी अन्य कलाकार नजर आते हैं। लेकिन इन सब के ऊपर, अभिनय के आधार पर इस फिल्म को मेघना मलिक की फिल्म कहा जा सकता है। यशपाल शर्मा ने जिस प्रकार से मेघना मलिक के माध्यम से एक माँ के हृदय की वेदना को उभारा है, वह अतुलनीय है। मेघना की हरियाणवी भाषा में संवादों की

अदायगी इतनी प्रभावशाली है, कि उनके बोलते समय पर पिक्चर-हॉल में सन्नाटा पसर जाता है; विशेषकर वह प्रसंग अत्यन्त मार्मिक बन पड़ा, जब तीसरी-चौथी बार लखमी के घर से भाग जाने पर वह थक कर कहती है, ‘इसे जाने दो।।।’ कैसे एक माँ अपने उद्दण्ड बेटे से हार जाती है, और ना चाह कर भी, मजबूरी में उसके घर से चले जाने को स्वीकार कर लेती है!

यह फिल्म यशपाल शर्मा की छः वर्षों की मेहनत का फल है। इसमें रागनी-गायन एकदम ठेठ देसी है, जो सीधा दिल में उतर जाता है। फिल्म की असली जान ही है उसका संगीत, जिसके द्वारा लखमी चन्द के सांग दिखाये गये हैं। एक कवि और सांगी की कहानी सुना कर यह पिक्चर फिल्म-निर्माण के क्षेत्र में एक नई राह दिखा रही है। उत्तम सिंह द्वारा तैयार किया इस फिल्म का उत्तम संगीत भारत की इस फिल्म को ऐमी अवार्ड दिलवाने की क्षमता रखता है।

बहुत समय के बाद परिवार के साथ बैठ कर देख सकने योग्य साफ-सुथरी फिल्म आई है। रवीन्द्र सिंह राजावत और यशपाल शर्मा द्वारा निर्मित इस लघु बजट की हरियाणवी फिल्म में समाज में पारिवारिक मूल्यों को पुनर्स्थापित करने की शक्ति है… इसे देख कर गाँव के सहज, सरल जीवन की ओर को वापसी का विचार मन में आता है। यह बच्चों को भी दिखाने योग्य फिल्म है, ताकि आधुनिकता की दौड़ में अन्धी होती हरियाणवी संस्कृति को पुनर्जीवन मिले।
यह फिल्म हरियाणवी फिल्मों को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाने का दम रखती है। फिल्म देखते हुए कई बार हॉल में व्याप्त सन्नाटे से दर्शकों के रोंगटे खड़े होने का आभास होता था। इस फिल्म ने हरियाणवी रागिनी और सिनेमा, दोनों को जिन्दा कर दिया। फिल्म के एक-एक दृश्य में हरियाणा के ग्रामीण जीवन और संस्कृति दिखाई देते हैं। जिस प्रकार बाहुबली और आर.आर.आर. जैसी अरबों रूपये के बजट वाली दक्षिण भारतीय/क्षेत्रीय फिल्मों ने भारतीय फिल्म इंडस्ट्री को एक नई दिशा दी, वही काम आज ‘दादा लखमी चन्द’ जैसी एक छोटी सी, कम खर्चे की फिल्म कर रही है।

यह फिल्म पण्डित लखमी चन्द के जीवन का पहला भाग दर्शाती है। बाकी जीवन-चरित जानने के लिये फिल्म के दूसरे भाग की दर्शकों को प्रतीक्षा रहेगी।